[illegible]णु-ग्रन्थमाला का प्रथम पुष्प

श्रीहरिः

प्रेमदर्शन-मीमांसा

[प्रथम खण्ड]

" Love's pain is very sweet"

Indra.

इन्द्र ब्रह्मचारी

प्रकाशक:—

स्वामी श्रीनारायणदास [रिटायर्ड तहसीलदार]

श्रीविष्णु-ग्रन्थमाला, वृन्दावन.

प्रथम संस्करण १०००

मूल्य १)

सुनहली जिल्द १।)

मुद्रक:—

बाबू प्रभुदयाल मीतल,

अग्रवाल प्रेस, वृन्दावन.

श्रीहरिः

विषय-सूची

भेंट

गोलोकस्वामिनी, परमतत्वाभिरामिनी,
सच्चिदानन्द-घन-स्वरूपिणी स्वेच्छाविलासिनी,
दिव्याह्लादिनी, पराशक्ति प्रमोदिनी,
परमप्रिय-प्रियतमा, श्रीवृन्दावन-विहारिणी,
प्रमोदकाननेश्वरी, व्रजेश्वरी
श्रीराधारानी
के
श्रीचरणों
में

अक्षय तृतीया, ६४ } श्रीनारायणदास

वक्तव्य

मेरा विष्णु मेरे स्थूल नेत्रों से अदृश्य है; किन्तु अदृश्य-जगत् से भी अपने मीठे-भावों का शृङ्गार करके मेरे एकान्त-हृदय में खेल कर रहा है। वह अमर, शाश्वत-भावों के राज्य में खेल करता हुआ मेरे एकान्त हृदय को स्पर्श कर रहा है, उसी ने मेरे हृदय को, विरह के उत्तप्त-जल से स्नान करा कर, श्रीवृन्दावन में बैठाया है। मेरा हृदय उसका आलिङ्गन कर रहा है, मैं उसकी स्मृति की समाधि में बैठा हुआ, व्रजरानी के श्रीचरणों का स्मरण कर रहा हूँ।

उसी की स्मृति में, सम्मान्य ब्रह्मचारी श्रीइन्द्रजी की प्रेरणा एवं उत्साह से "विष्णु-ग्रन्थमाला" का जन्म हुआ है। इस ग्रन्थमाला से भगवत्प्रेम-सम्बन्धी ग्रन्थों का प्रकाशन होता रहेगा। "प्रेमदर्शन-मीमांसा" माला का प्रथम पुष्प है। श्रीब्रह्मचारीजी मुझ पर स्नेह के भाव रखते हैं, इनका हृदय प्रेमी है, प्रेम-पीड़ा ही इनके जीवन

की एकान्त एवं परम प्रियनिधि है । इनके जीवन-स्रोत में, अष्ट-प्रहर, प्रेम-सङ्गीत हो रहा है । इन्हें हृदय के भावों को डलिया सजाना आता है । विधाता ने इनके हृदय को सुन्दर और मस्तिष्क को सर्वथा उत्तम बनाया है । मस्तिष्क और हृदय का साथ-साथ खेल होने से, इनकी लेखनी में दार्शनिक विचारों एवं प्रेम-सम्बन्धी भावों का समिश्रण है । "प्रेमदर्शन-मीमांसा" में दर्शन-शास्त्र एवं प्रेम-शास्त्र के आवश्यक सिद्धान्तों का, बड़ी-ही उत्तमता से, समन्वय किया है । यह ग्रन्थ दर्शन-शास्त्र के विद्यार्थियों एवं प्रेम-पथ के पथिकों के पढ़ने योग्य है । इसका दूसरा भाग भी शीघ्र ही पाठकों की सेवा में पहुँचेगा । श्रीवृन्दावनेश्वरी श्रीराधारानी इस ग्रन्थमाला को स्थायी बनायें और श्रीब्रह्मचारीजी के अन्तःपुर के भावों को पुस्तक-रूप में परिणित करते रहें ।

—श्रीनारायणदास

—:※:—

भूमिका

(१)

भारतीय दर्शन शास्त्र विश्व की सुन्दरतम विभूति और भारत के चिरअतीत की गौरवमयी स्मृति है। भारत के धार्मिक एवं सामाजिक जीवन का निर्माण उसी ने किया है, विश्व को आध्यात्मिकता का सन्देश उसी ने दिया है और मानव जाति को भगवद्भक्ति का पुनीत पाठ उसी ने पढ़ाया है। न केवल भारतीय-साहित्य एवं इतिहास की दृष्टि से ही; अपितु अखिल विश्व के साहित्य और इतिहास में उसका अपना स्थान सब से अधिक महत्व-पूर्ण एवं प्राचीनतम है। मानव-संस्कृति के अरुणोदय-

भूमिका

काल में पाश्चात्य संस्कृति के जन्मदाता, प्राचीनतम, एवं सुदूरवर्ती यूनान देश के साहित्य और विचारधारा को अपने उज्वल आलोक से उसने आलोकित एवं प्रभावित किया है, ऐसा विशेषज्ञ विद्वानों का निश्चित मत है। आज इस अवनति काल में भी जब कि भारत का और सब कुछ खो गया है यही एकमात्र उज्वल रत्न है, जो उसके अतीत गौरव को अक्षुण्ण एवं स्थिर बनाए हुए है। मानव संस्कृति के सुकृतवश; विश्व के इस वैभव, विलास और विद्युत् प्रकाश से परे पूर्व में आज भी एक शान्तिदायिनी दिव्य-ज्योति उद्भासित हो रही है, जो चिर सन्तप्त मानव हृदयों को अपनी पुण्य-प्रभा से शाश्वत शान्ति का प्रकाश प्रदान कर आनन्द से आप्लावित कर सकने में समर्थ है और वह है भारतीय आध्यात्मवाद की अमर ज्योति। उपनिषदों के आध्यात्मवाद ने यदि एक समय दाराशिकोह की अशान्त आत्मा को शान्ति-प्रदान की थी तो आज भी विश्व के लिये अमर-शान्ति का सुन्दर सन्देश उसमें उपस्थित है। वाह्य-वैभव से विमुख होकर अन्तर्मुखी वृत्ति से जब पूर्व की ओर देखने का अवसर

पश्चिम को मिलेगा तब ही आध्यात्मवाद की ऊषा में उदय होती हुई अमर शान्ति के उज्वल आलोक का आभास उसे मिल सकेगा। प्राचीन भारत ने सुख, सम्पति और बाह्य-वैभव की उपेक्षा कर अनन्य भाव से इस आध्यात्मिकता को अपनाया था मानों इसी से इस टेढ़े समय में आध्यात्मवाद वृद्ध भारत के उस अतीत गौरव की रक्षा कर अपनी कृतज्ञता प्रकाशित कर रहा है।

(२)

भारतीय दर्शन शास्त्र का क्षेत्र बड़ा विस्तृत है, सूक्ष्म-दृष्टि से देखा जाय तो विश्व की समस्त मौलिक समस्याओं और समस्त विचार-धाराओं का समावेश उसमें हो जाता है। नैरात्म्यवाद के साथ सर्वात्मवाद का, अज्ञेयवाद के साथ विज्ञानवाद का और शून्यवाद के साथ ब्रह्मवाद का सुन्दर समन्वय और ज्ञान, कर्म एवं भक्ति की त्रिवेणी का सङ्गम इसी पुण्य क्षेत्र में हुआ है। भारत के आध्यात्मिक प्रासाद का निर्माण जिन मौलिक तत्वों के आधार पर हुआ है, ज्ञान कर्म और भक्ति की योगत्रयी ही उनमें सर्व-प्रधान सिद्धान्त है। भारत

के आध्यात्मिक अनुसन्धानकर्ता ऋषियों ने विभिन्न श्रेणी, विभिन्न सामर्थ्य और विभिन्न अभिरुचि के अधिकारियों के लिये इन त्रिविध मार्गों का निर्माण किया है। भक्ति मार्ग इनमें से ही एक सरल, सुन्दर एवं सरस मार्ग है, जो मानव जीवन को उसके ध्येय तक पहुँचने में सहायक होता है। योग सूत्रों के निर्माता महर्षि पतञ्जलि और उनके भाष्यकार श्रीव्यासदेव ने 'ईश्वर प्रणिधानाद्वा' (योग० १ . .) इस सूत्र और उसके भाष्य में स्पष्ट रूपसे भगवद्भक्ति के इस मार्ग को ही सर्वोत्तम साधन और शीघ्रतम इष्ट सिद्धि कराने वाला मार्ग माना है। उपनिषद् साहित्य ने —

'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुतेतेनलभ्यो, तस्यैषात्मा विवृणुते तनुस्वाम् ॥'

के स्पष्ट और जोरदार शब्दों में डिण्डिम घोष पूर्वक इसी तथ्य की घोषणा की है और वैदिक साहित्य तो पूर्णतया भगवद्भक्ति की उदात्त भावनाओं से भरा हुआ है। संक्षेप में कहा जाय तो भक्ति-सिद्धान्त उपनिषदों से उद्भावित, वेद से बोधित और दर्शनों से समर्थित सुन्दरतम सिद्धान्त

है। उसमें कर्म की-सी शुष्कता नहीं है। उसमें ज्ञान की सी गहनता भी नहीं है। वह तो भक्त हृदय को प्रेम से परिपूर्ण, भक्ति से विभोर और आनन्द-रस से आप्लावित परमानन्द में निमग्न करने की अद्भुत क्षमता रखता है। भगवत्प्राप्ति के लिये, निर्वाण और अपवर्ग के लाभ के लिये भगवद्भक्ति के समान सरस, सरल और सुन्दर साधन दूसरा नहीं है। दार्शनिक साहित्य में इसी 'भक्तिदर्शन' का दूसरा नाम 'प्रेमदर्शन' भी है।

यों देखा जाय तो प्रेम और दर्शन शब्द का समन्वय कुछ अटपटा-सा ज्ञान पड़ता है, क्योंकि प्रेम हृदय की रागात्मक भावनाओं का सार है, और दर्शन का आधार वैराग्य है। विशेषतः भारत के दार्शनिक क्षेत्र में प्रधान साम्राज्य वैराग्य का ही है। पूर्ण वैराग्य के बिना दर्शन के प्रकृत-क्षेत्र में प्रविष्ट होने का या दर्शन शास्त्र का दरवाज़ा खट-खटाने का अधिकार भी किसी को नहीं है। इसी से सांसारिक विषयों के प्रति इस वैराग्य-भावना को उद्भावित एवं परिपुष्ट करने के लिये ही दार्शनिक साहित्य में विश्व को एकान्ततः गर्हित, हेय और

परित्याज्य रूप में अङ्कित किया गया है। दर्शन-शास्त्र सुन्दर को भी असुन्दर रूप में देखने का आदेश देता है और प्रेम स्वभावतः असुन्दर को भी सुन्दर बनाना चाहता है। इसी से आपततः प्रेम और दर्शन शब्द का समन्वय कुछ अटपटा-सा प्रतीत अवश्य होता है; परन्तु वस्तुतः प्रेम ही दर्शन का सार और प्रेम ही भगवान् का स्वरूप है।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो भक्ति-दर्शन या प्रेमदर्शन भारत का प्राचीनतम दार्शनिक विचार है। आज की भाँति ही विश्व के प्राचीनतम साहित्य में वैसे ही सुन्दर रूप में उसका निरूपण किया गया है। उसकी प्राचीनता का परिचय ही वैदिक-साहित्य में भी उपलब्ध होता है। ऋग्वेद विश्व साहित्य का प्राचीनतम ग्रन्थ है। उसके दार्शनिक विचारों का संकलन यदि किया जाय तो भक्ति-दर्शन का मूलतत्व उसमें भी यथेष्ट रूप में दिखाई देता है। यद्यपि उत्तरवर्ती दार्शनिक साहित्य की भाँति ऋग्वेद में भी ज्ञान कर्म और भक्ति की त्रिविध विचार धारा मिलती है, परन्तु फिर भी ऋग्वेद तथा अन्य वैदिक साहित्य के अनुशीलन से यह निश्चित

जान पड़ता है कि, भक्ति–भाव ही वैदिक साहित्य का प्रधान भाव है। वैदिक दृष्टि-कोण से ज्ञान और कर्म का आधार एवं उनका बल भक्ति ही है। इस भक्ति सिद्धान्त के विषय में वेद और उत्तरवर्ती दार्शनिक साहित्य में कुछ मौलिक मत–भेद अवश्य पाया जाता है, परन्तु वह सर्वथा स्वाभाविक ही है। उत्तरवर्ती दार्शनिक साहित्य ने अधिकांश अपवर्ग सिद्धि के लिये ज्ञान मार्ग का अवलम्बन किया और वैराग्य को उसका सहकारी माना है; इसी से विश्व को उसने अत्यन्त हेय और एकान्ततः गर्हित रूप में अङ्कित किया है। परन्तु वेद जो 'देव का अमर काव्य' है, उसने विश्व के सुन्दर स्पृहणीय स्वरूप को भी देखने का प्रयत्न किया है और उसका एक मात्र कारण उसका भक्ति-भाव है। वैदिक साहित्य ने प्रधानतया भक्तिमार्ग का ही अनुसरण किया है और भगवत् प्रेम को ही विश्व के कल्याण का प्रमुख साधन निर्दिष्ट किया है, इसी से विश्व के सुन्दरतम स्वरूप को भी देखने का अवसर भी उसे मिल सका है और इसी से प्रेम, कारुण्य और वदान्यता की स्पृहणीय भावनाओं को वेद ने सुन्दरतम रूप में

अङ्कित करने का प्रयत्न किया है। उसने विश्व नियन्ता को नाना रूप में देखा और वर्णन किया है। उसके अनन्त गुणों के आधार पर विभिन्न नामों, विविध स्वरूपों और विविध भावनाओं से भगवान् का स्मरण वेद ने किया है। भगवद् भक्ति की जिन परम पुनीत भावनाओं का सुन्दरतम चित्रण वैदिक साहित्य में किया गया है, उत्तरवर्ती भक्ति-दर्शन का आधार वही भावनायें हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भक्ति-दर्शन या प्रेम-दर्शन मूलतः वैदिक साहित्य की सम्पति और देन है। वैदिक साहित्य के इस भक्ति-प्रधान भाव को ही उत्तरवर्ती भक्तिवादी आचार्यों में विकसित, पुष्पित और पल्लवित किया है। भक्ति दर्शन के साहित्य निर्माता आचार्यों में श्रीशांडिल्य, श्रीनारद और श्रीरामानुजाचार्य आदि वैष्णव आचार्यों का प्रमुख स्थान है। उनकी सारगर्भित रचनायें दार्शनिक साहित्य के इतिहास में सदैव कृतज्ञता पूर्वक स्मरण की जाती रहेंगी।

ईसा की आठवीं शताब्दी से लेकर पन्द्रहवीं शताब्दी तक के ७०० वर्षों के बीच इस भक्तिदर्शन या प्रेमदर्शन के विकास का प्रधान युग है। वैदिक साहित्य में और उप-

निषदों में, जिस भगवद् भक्ति की दिव्य भावनाओं का सूक्ष्म निरूपण हुआ था उन्हीं का विशद विश्लेषण वैष्णव आचार्यों ने एक स्वतंत्र शास्त्र के रूप में किया है। आज भक्तिदर्शन या प्रेमदर्शनके नामसे मुख्यतः वही साहित्य उपलब्ध होता है जिसका विकास वैष्णव आचार्यों की कृपा से इन ७०० वर्षों के बीच हुआ। भक्ति दर्शन के इतिहास में वह साहित्य वस्तुतः महत्व-पूर्ण स्थान रखता है।

उस भक्ति दर्शन या प्रेम दर्शन के उन मौलिक सिद्धान्तों का विवेचन करने वाली कोई अच्छी पुस्तक हिन्दी साहित्य में अब तक नहीं लिखी गई थी। श्रीइन्द्र ब्रह्मचारीजी ने अपनी इस प्रेमदर्शन-मीमांसा द्वारा हिन्दी साहित्य की उस बड़ी कमी को दूर करने का प्रयत्न किया है। भक्तिदर्शन के सम्बन्ध में इतना विशद विवेचन, इतनी सूक्ष्म-समीक्षा और इतना सुन्दर उपपादन करने वाली यह प्रथम पुस्तक है। श्रीब्रह्मचारीजी का यह प्रयास अत्यन्त सुन्दर और सराहनीय है। इन्होंने भक्तिदर्शन के साहित्य की गौरव वृद्धि की है और हिन्दी साहित्य को

एक नवीन, उपयोगी बहुमूल्य भेंट प्रदान की है। आशा है हिन्दी जगत् इनकी इस सुन्दर रचना को अपनावेगा और इस अमूल्य उपहार के लिये उनका आभार मानेगा।

गुरुकुल-वृन्दावन सोमवती अमावास्या, वैशाख १९९४	}	विश्वेश्वर, सिद्धान्त शिरोमणि दर्शनाचार्य,

स्वर्गीय पंडित श्रीविष्णुनारायणजी दुबे

स्मृति में

शेक्सपीयर के टेम्पेस्ट नाटक का एक चरित्र प्रासपेरो कहता है:—

We are suche stuff
as dreams are made of and our little life,
is rounded with a sleep

[Shakespear's Tempest]

हम वह पदार्थ हैं, जिनसे स्वप्न की सृष्टि हुई है, अपना यह अल्पजीवन निद्रा से घिरा हुआ है।

सुख-दुःख, जन्म-मृत्यु छाया की भांति, जीवन के पीछे-पीछे घूमा करते हैं, इन्हें कोई मना नहीं कर सकता। जो स्थूल शरीर का चोंगा पहिने हुये उछल-कूद मचा

रहा है, वह एक-न-एक दिन अवश्य इस चोंगे को, चुपचाप, रखकर, चला जायगा। तुम आये, चले गये, इसका मुझे, न तो इन्हें, उन्हें खेद है। खेद तो यह है कि तुम्हारे जीवन का विकास न देख सके, तुम एक नव-विकसित प्रसून की भांति आये और बिना विनिमय के चुपचाप चले गये। तुम्हारे प्राण कहाँ हैं, तुम क्या कर रहे हो, इसका पता हमें कहाँ: किन्तु कहीं भी रहो, कुछ भी करो, किन्तु प्रभु-प्रेम की प्यास से अधीर बने रहो। यह मेरा आदेश और उपदेश नहीं; किन्तु है संकेत। वैसे तुम्हारी इच्छा!

तुमने अपने को अदृश्य-जगत् में रख कर अपने श्रीपितृव्य-चरण पर कृपा की, यदि ऐसा न करते तो सम्भव था, कि व्रजेश्वरी श्रीराधा-रानी की निकुञ्ज-स्थली, श्रीवृन्दावन की रसमय भूमि में इनका प्रवास नहीं होता। और ये तुम्हारी लौकिकी-शिक्षा के बाह्य-शृङ्गार का ही अवलोकन कर के अपने को सुखी समझते।

सचमुच स्थूल सम्बन्ध-विच्छेद की महिमा मङ्गल-मयी है।

स्मृति में

तुम्हारे श्रीपितृव्यचरण ने, तुम्हारी प्रेम-स्मृति में, "श्रीविष्णु-ग्रन्थमाला" का उद्घाटन किया, इससे भाव-वादी, प्रेम-पुजारी एवं सदाचार के विद्यार्थी लाभ उठायेंगे. इसका श्रेय तुम्हीं को है। इस "ग्रन्थमाला" को, अपनी समझ कर, अपनाते रहो और अदृश्य-जगत् से अपने भावों को फेंक कर ग्रन्थ-प्रणयन में सहयोग देते रहो।

तुम्हारा अपना ही

इन्द्र
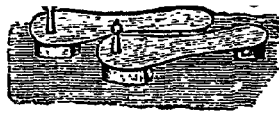
मंगल कामना

हाय ! मैंने न तो अपने जीवन में श्रीराधा-रमण के चरणों का ही आश्रय लिया, और न भगवान् पार्वतीपति के पादपद्मों की प्रेम के साथ पुष्पादि से पूजा ही की। बस, दूसरों की विषय-सामिग्रियों के अपहरण में ही काल-यापन किया। हे दयालो ! प्रभो ! जब मेरा परलोक में यमराज से साक्षात्कार होगा तब मैं क्या कह सकूँगा ? वहाँ मेरी गुजर कैसे होगी ? हाय ! मैंने अब तक का समय व्यर्थ ही बरबाद कर दिया।

प्रभु के प्रेमी अपनी वाणी से निरन्तर सुमधुर हरिनामकीर्तन करते रहते हैं, स्तुतियों से श्रीबाँकेविहारीजी, श्रीराधावल्लभजी, श्रीराधारमणजी की विरुदावली गाते रहते हैं, मन से उस मुरली-मनोहर के सुन्दर रूप का चिन्तन करते रहते हैं। और शरीर से उनके लिये सदा प्रणाम-दण्डवत करते रहते हैं। वे सदा विकल-से, पागल-से, अधीर-से तथा अतृप्त-से ही बने रहते हैं। उनके नेत्रों से सदा जल टपकता रहता है, इस प्रकार वे अपनी

सम्पूर्ण आयु को मंगलमय श्रीहरि के ही निमित्त समर्पण कर देते हैं, ऐसे भक्त धन्य हैं, इनके पवित्र श्रीचरणों में साष्टाङ्ग दण्डवत है। ये सभी भक्त मुझ अधम पर कृपा करें, अपने श्रीचरणों की धूलि से कृतार्थ करें।

सम्पूर्ण शरीर की गठन एक सुन्दर नट के समान बड़ी ही मनोहर और चित्ताकर्षक है। सिर पर मोर मुकुट विराजमान है। कानों में बड़े-बड़े कनेर के पुष्प लगा रखे हैं, कनक के समान जिस की द्युति है, ऐसा पीताम्बर सुन्दर शरीर पर फहरा रहा है, गले में वैजयन्ती माला पड़ी हुई है। कुछ आँखों की भृकुटियों को चढ़ाये हुये, टेढ़े होकर वंशी के छिद्रों को अपने अधरामृत से पूर्ण करने में तत्पर हैं। उन छिद्रों में से विश्वविमोहिनी ध्वनि सुनाई पड़ रही है। पीछे-पीछे ग्वालवाल यशोदानन्दन का यशोगान करते हुये जा रहे हैं, इस प्रकार के मुरली मनोहर अपनी पद-रज से श्रीवृन्दावन की भूमि को पवित्र करते हुये व्रज में प्रवेश कर रहे हैं, ऐसे श्रीमंगलमय श्रीप्रभु मुझ अधम जीव का मंगल करें।

——:*:——

निवेदन

जीव अनादि विराट् से निकल कर अनन्त विस्तृत की ओर जा रहा है। यह आरम्भ काल से ही "प्रेमान्वेषण" में तत्पर है। प्रेम ही परम पुरुषार्थ की वस्तु है, यह अपनी इच्छा से अपने प्रियतम को अनन्त नामों से पुकार रहा है, इसकी अनन्त लीलाओं का गान करता हुआ अपने हृदय की सेज पर प्रियतम को प्रतिष्ठित करने का यत्न कर रहा है। इसके अनन्त-रोदन के राग में, प्राणों की पुकार में, चित्त की चीख में, इच्छाओं के संगीत में वही प्रियतम "प्रेम" खेल कर रहा है। "प्रेम" की आध्यात्मिक व्याख्या। "प्रेमदर्शन-मीमांसा" के दूसरे भाग में की जायगी।

ॐ

चिरकाल से मेरे चञ्चल चित्त में प्रेम-कहानी लिखने की प्रेरणा हो रही है; किन्तु शरीर की अस्वस्थता एवं चित्त की अस्तव्यस्तता के कारण ऐसे गंभीर विषय पर लिखना मेरे लिये नितान्त कठिन हो रहा है। दूसरों के पढ़ने के लिये नहीं; किन्तु स्वयं अपनी इच्छा ऐसी हो रही है कि ऐसे ग्रन्थ का प्रणयन हो जाय, जिसके स्वाध्याय से सूखे प्राणों में कुछ तरी आ जाय। यह कार्य तो मेरे लिये मेरा कृपालु ही करता तो अच्छा था; किन्तु उसे इतना अवकाश कहाँ!

अपनी इच्छा से, स्वयं अपने स्वाध्याय के लिये, यह पुस्तक तैयार हुई है, किसी प्रेमी पाठक को पसन्द आ जाय, और वे पढ़ने की कृपा करें, इसमें मेरा और मेरी पुस्तक का गौरव है।

पुस्तक के द्वितीय भाग में बहुत आवश्यक विषय हैं, जिनकी संक्षिप्त नामावली इस प्रकार है:—

"हृदय में गति क्यों होती है?, क्या आकर्षण को ही पारस्परिक प्रेम कहते हैं?" हृदय और प्रेम, प्रेम और मोह, प्रेम और आसक्ति के भाव, प्रेम और काम,

जीव जगत् और प्रेम, ईश्वरीय जगत और प्रेम, प्रेम और भक्ति, प्रेम का चिन्मयत्व, प्रेम कब प्रारम्भ होता है ?, प्रेमी की अवस्थायें, प्रेमी क्या चाहता है ?, प्रेमी की पीड़ा, प्रेम का बाह्यरूप, प्रेम का अन्तरङ्ग रूप, प्रेम और प्रेमी, प्रेमी और प्रेम पात्र, प्रेमी का व्यवहार, प्रेमी किस भूमिका में रहता है ?, प्रेम और संस्कृत के कवि, प्रेम और हिन्दी के कवि, प्रेम और उर्दू के, कवि, प्रेम और ब्रजभाषा के कवि, प्रेम और बँगला के कवि, प्रेम और अंग्रेजी के कवि, प्रेम और कविता, प्रेम और हृदय संगीत, प्रेम और गोपी, प्रेम और श्रीकृष्ण, प्रेमी के प्रति प्रेम पात्र का व्यवहार कैसा होना चाहिए ?, प्रेम और स्थान विशेष, प्रेम और भाव-विज्ञान, प्रेम की भाषा, प्रेम-शास्त्र और अध्यात्म-शास्त्र, प्रेम और उसका प्रवाह, प्रेम क्या है ?, प्रेम और द्वैतवाद, प्रेम और अद्वैतवाद, प्रेम और द्वैताद्वैतवाद, प्रेम का आध्यात्मिक स्वरूप और उसकी विस्तृत व्याख्या, प्रेम और समस्त वैष्णव दर्शन, प्रेम के परियायवाची नाम, प्रेम और श्रीहित तत्व की दार्शनिक व्याख्या, प्रेम-राज्य का

आह्लाद और अह्लादिनी, प्रेम और समस्त कोमल-कलायें, प्रेम में वाणीजी का प्राकट्य, वाणीजी का आध्यात्मिक स्वरूप, इत्यादि। सम्भव है, पुस्तक-प्रकाशन-समय में कुछ प्रकरण न्यूनाधिक हो जावेँ। प्रथम भाग में मेरा अपना तो कुछ नहीं है। प्रारम्भ में दृश्य-जगत् परिचय है, न्याय, वैशेषिक और वेदान्त के प्रकरण को, बंगाल के प्रसिद्ध दार्शनिक श्रीहीरेन्द्रनाथदत्त एम. ए. बी. एल. द्वारा प्रणीत, बंगला ग्रन्थ "गीताय ईश्वरवाद" से लिया गया है।

प्रेम के बहुत से आवश्यक प्रकरण, पाश्चात्य दार्शनिक, आचारशास्त्रज्ञ मि० जेम्सएलनकृत "फ्राम पावर्टी टू पावर" ग्रन्थ से लिये गए हैं।

बहुत से प्रेम-प्रसङ्ग मेरी दैनन्दिनी में पूज्यपाद श्रीगुरुदेव ने, अपने आप कृपा पूर्वक, लिख दिया था। जिसके प्रसङ्ग में मैं प्रायः पूछा करता था, प्रथम भाग में मेरा कोई अधिक परिश्रम नहीं है। मैंने केवल यथा-स्थान विचारों को "मेक-अप" कर दिया है। तोताद्रिमठ के विद्वान् दार्शनिक श्रीरामप्रपन्न श्रीरामानुजदासजी महाराज मुझ पर कृपा के भाव रखते हैं, उन्होंने दार्शनिक प्रकरण को

निवेदन

तैयार करने में सहायता दी है, इसका मैं कृतज्ञ हूं। स्थानीय श्यामकुटी के शान्तिप्रिय, श्रीबालकृष्णजी, श्रीभगवानदास पाठशाला विद्यालय के कुशल छात्र पंडित श्रीचरणदत्तजी शास्त्री समय-समय पर छपे हुये फर्मों को पढ़ कर सम्मति देते रहे और द्वितीय भाग को शीघ्र ही तैयार करने के लिए प्रोत्साहित करते रहे, इसके लिए इन्हें अनेक धन्यवाद। श्रीचरणदत्तजी दार्शनिक-संस्कारों के विज्ञान विद्यार्थी हैं, प्रभु इन पर कृपा करें।

मेरे लिये सब से प्रसन्नता की बात तो यह है कि यह पुस्तक "श्रीविष्णु ग्रन्थमाला" के प्रथम पुष्प रूप में प्रकट हो रही है। पुस्तक के प्रकाशक भगवद्रूप-रसिक भगवच्चरणानुरागी, स्वामी श्रीनारायणदासजी महाराज हैं। श्रीविष्णुनारायणजी आप के पुत्र थे, पुत्र की प्रेम-स्मृति में ही इस ग्रन्थमाला का जन्म हुआ है, इस ग्रन्थमाला से भगवत्प्रेम-सम्बन्धी ग्रन्थों का प्रकाशन होगा। मंगलमय श्रीहरि इस मंगल-कामना को स्थायी बनायें, और प्रकाशक की हृदय-वीणा को स्पर्श करके कृतार्थ करें।

निवेदन

प्रथम भाग पन्द्रह दिन में छप कर तैयार हुआ है, शीघ्रता के कारण प्रूफ-संशोधन में अनेकों त्रुटियाँ रह गई हैं, प्रेमी पाठक वाक्यों को शुद्ध वना कर पढ़ लेंगे।

अग्रवाल प्रेस के सञ्चालक बाबू प्यारेलालजी के प्रेस-सञ्चालन की खूबी है कि इतनी शीघ्रता में पुस्तक तैयार हो गई और दूसरा भाग भी शीघ्र ही तैयार हो जायगा।

श्रीवृन्दावन
अक्षय तृतीया, ९४

विनीत
इन्द्र

सम-लालित

नव प्रकाशित

बहु चि त्रि त

सु छ पि त

कुछुआकी बेटी

अछूतोद्धारक उपन्यास में

दार्शनिक अघोड़ी

मनुष्यानन्दका आश्चर्यमय चरित्र पढ़िये। अघोड़ीके अनोखे आश्चर्यजनक कार्योंको पढ़ कर आप फड़क-फड़क हो उठेंगे।

चार सौ पृष्ठ! तिनरंगा कवर!! मोटा कागज़!!!

मूल्य ३) रुपये

पता—बीसवीं सदी पुस्तकालय,

गऊघाट, मिर्ज़ापुर सिटी।